

मन्वन्तर

श्रीशंभूदयाल सकसेना

बीकानेर

नवयुग-ग्रंथ-कुटीर

१॥)
पहली बार
१९४४

प्रकाशक
नवयुग प्रथ-कुटीर
फर्दखाना

मुद्रक
हरप्रसाद वाजपेयी,
कृष्ण प्रेस
२६ हिप्पेट रोड, प्रयाग ।

यह मन्वन्तर !

सयोग की बात, यह 'मन्वन्तर' उस समय प्रकाशित हो रहा है जब विश्व सचमुच एक मन्वन्तर की भाँकी देख रहा है। महाप्रलय का अकांड ताडव उपस्थित है। प्रतिपल भूडोल आरहे हैं। भूमा के भूकोरों में क्या विलीन हो जायगा और क्या बाकी बच रहेगा, यह जानने की सामर्थ्य आज किसमें है ? शतोर्मियों से लहरा लहरा कर प्रलय के ज्वालामुखी की सर्वप्रासिनी लपटें सर्वस्व को आत्मसात् करने के लिए चली आ रही हैं। उनका आज घर-घर में स्वागत हो रहा है। देशों के प्रागण उनके लिए उन्मुक्त पडे हैं। युवकों के वृक्षस्थल उनके आलिगन को तड़प रहे हैं। वे खुशी से आर्य और अपने साथ विनाश का वरदान लेती आर्यें। महानाश के इसी बीज से नूतन सृष्टि के मंगलमय अक्षुर फूटेंगे। प्रलय की इस कालरात्रि के बाद, ओस की बूंदों से गुँथी प्रकाश रश्मियों की माला गले में धारण करके, प्रकृति रानी नवयुग का पहला उत्सव मनायेंगी।

साहित्य जीवन का प्रतिफलन है। जीवन के द्वार पर जो मन्वन्तर उपस्थित है वह साहित्य के मंदिर में भी प्रवेश करेगा। वह बाहर कैसे रह सकता है ? वास्तव में युग की यही आवश्यकता है—जीवन का यही परम सत्य है। इसे कविता के क्षणों में अमर न करने वाला कवि जीवन और युग की ओर से विमुख रहेगा। उसकी कला म्यूजियम की वस्तु होकर सुरक्षित रखने योग्य हो सकती है, पर जगत के साथ पग मिलाकर चलने के सामर्थ्य का उसमें अभाव है।

मन्वन्तर के इसी सर्वसंहारधारा रूप का स्वागत करने के लिए विश्व कवि का आत्मा घुम्मुन्म हो रही है। यह इसलिए नहीं कि मृत्यु काइ गच्छनीय रस्तु है वह काइ मीढ़ा की सामग्रा है, वरन् इसलिए कि चमक परगात नवसृजन की मूपना है। उस नव्य मृष्टि को पूर्व सूचना न कवि के अन्तराल म आकुलता का महादधि तरंगित कर दिया है। उन तरंगों पर भूलता हुआ वह उस अभिनव इश्य की कल्पना कर रहा है। यह कल्पना परम मगल की आकाशा से ओनप्रोत है।

आज धर्म जानि और राष्ट्रीयता के धर्म को छेदकर साहित्य की प्रवृत्ति ने मानयता के कुमुम रोमन शरीर का स्पर्श पा लिया है। अब तक कवि और काव्य जिस दुनियाँ में सत्य की खोज कर रहे थे वह पैमव के आलोक से पूर्ण होकर भी बहुत छोटी थी—सकीर्ण थी। उसने बाहर एक विशाल जगत् का अनुसंधान करके आन काँच का बीणा म छुन्न पागल होकर बज रहे हैं। सहज मानव के चरणों म, जिसे कुलीनता, जातीयता, राष्ट्रीयता, साम्प्रदायिकता, धार्मिकता आदि के र्भ ने कलुषित नहीं किया है, समर्पित होकर आन का काव्य अपने को कृतकृत्य मानता है। आलाक का एसी हा प्रकाशरेखा मन्वन्तर के अन्तर से काँच रही है। केवल कवि ही उसे देख पा रहा है। वह तो नई उद्भवनाओं और नई धारणाओं का अमद्भूत है। इसलिए आओ, सत्र मिलकर मन्वन्तर के इस महापर्व का अभिनन्दन करे।

कौन जाने मन्वन्तर के अनुवर्ता इस 'मन्वन्तर' में भी कोई अरुत्प प्रकाश है? हो ता, मेरा प्रयास व्यर्थ न हा सकेगा।

वसन पचमी
संवत् २००० वि०

शम्भूदयाल सक्सेना

सूची

विषय	पृष्ठ
१—मन्वन्तर	११
२—ब्राह्मण से	२०
३—अजन्ता की कला	२६
४—सती	३३
५—जीवन ढग	३५
६—अछूत	३६
७—आर्ष सस्कृति	४१
८—मोर्हे जो दड़ो	४५
९—नव सृजन	५०
१०—मानव	५१
११—सर्वहारा	५२
१२—नवयुग के मानव से	५६
१३—पुराकाल	५८
१४—शूद्र	६१
१५—ध्वस्त सस्कृति पर	६६
१६—इतिहास	७५
१७—अतेवासी	८०
१८—विक्रम महान	८४
१९—नालदा	८७
२०—ताजमहल	९०
२१—विश्वभारती	९५



विक्रम की दूसरी सहस्राब्दी
की
स्मृति में

अनन्यतराह

मन्वन्तर

अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया ।

ऋक्, साम, यजुप् की वाणीसे,
स्मृति-दर्शन-वीणापाणि' इ से,
गौरी, सोमा, कल्याणी से,

देवाधिदेव के चरणों में ले पहला अर्घ्य प्रदान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया ।

त्रिष्टुप, गायत्री, गाथाएँ,
नव नव छंदों की मापाएँ,
सहिता और वे शास्त्राएँ,

रच-रचकर प्रचुर 'अर्चना का मधुपर्क' नया निर्माण किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सस्कृति को प्राण दिया ।

ऋषियो की वाणी से बरसा,
सविता के मंत्रों में परसा,
द्यौ, त्वष्ट्रा, भरुतो ने परसा,

उस अमर भाव धिर चिर नवीन से कृतयुग-रूप विधान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अनुपम सस्कृति को प्राण दिया ।

व रूपदूता सा मरिनाए,
गंगा यमुना शैवे-शैवै,
सम निजानन्द मन्दरायै,

उनके पावन उपदूतों पर हमने शुभ यह विधान किया।
अपने मन्वन्तर म हमने अपनी सृष्टि को प्राण दिया।

कुत्रा-कटक, सघन अरण्य रहे,
धापद प्रवाह निर्वाध बहे,
उन कठिन दिना की कौन कहे ?

हल-हँसिया ले हो कृषक प्रथम हमने कृषिकर्म प्रमाण किया।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सृष्टि को प्राण दिया।

हल की नोका व लेख अमर,
हैं लिखे हुए विमृत भू पर,
पग पग नन्दन फानन सुन्दर,

मिट्टी से अन्न, वस्त्र, पत्त, फूला का हमने धरदान लिया।।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सृष्टि को प्राण दिया।।

वृण-वृण, वण-वण सधम चुनकर,
सायस खाण गिरिपथ उसर,
जीवन गृह नव्य भव्य रथकर,

इन उभय करों के कौशल ने नवयुग का पथ सधान किया।
अपने मन्वन्तर म हमने अपनी सृष्टि को प्राण दिया।

ईंटें, चूना, मिट्टी, पत्थर,
ले ले बसुधा पर दुर्ग-नगर,
रच दिये सौध, मन्दिर सुन्दर,

भास्कर्य शिल्प सी दिव्य कला को हमने नव उत्थान दिया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

कर दिये यहाँ साम्राज्य खड़े,
वे प्रजातंत्र, गणराज्य बड़े,
जिनके खँडहर ला, अभी पड़े ।

शासन, सत्ता, अधिकार, स्वत्व का बहु बहु विधि व्याख्यान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

अमिताभ यहीं चलकर आये,
करुणा ने सजल गान गाये,
श्रद्धा में सागर लहराये,

सब मोह-अंध खुल गये जीर्ण जीवन ने नया उफान लिया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

हो उठे मुखर स्वर-ग्राम मौन,
लेखनी चपल, तूलिका, पौन,
पी छके शिल्प सब अमृत कौन ?

घर-घर पग-पग उस दिव्य सृष्टि का रम्य-रुचिर परिधान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

जाया से घानी तक घर घर ,
चल पैल गई सभ्यता सुफर ,
वे तदण अरुण मानव के घर ,

अनगद चंपा का सौम्य शिल्प का, नव संस्कार प्रदान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सृष्टि को प्राण दिया ।

गुर्मा, लिच्छिविया, नागा ने,
काश्मीर, सिन्ध भूभागाने,
ग्रामों ने, याग-तडागों ने,

अपनी अपनी अन्ननि दवर, पूजा का अर्घ्य प्रदान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी सृष्टि का प्राण दिया ।

शक, कुशान, हूणदल बतार रहे,
निज निज कृत्या को जतार रहे,
इतना ता सयको पतार रहे—

आया अग्निहोत्र न यह रचा, हमने पूर्णाहुतिदान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

सब के प्राणों की खाद यहाँ,
सब का रुचता यह खाद यहाँ,
सदियों का शुभ संवाद यहाँ,

अशक्त हाथा से गली राष्ट्र प्रतिमा को रूप प्रदान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति का प्राण दिया ।

ईरानी, यूनानी, पठान ,
तुर्की, अरबी, मगोन-खान ,
गजनी, काबुल औ' इस्पहान ;

भारत-वेदी पर मिल बैठे, नत्र दृष्टिकोण सधान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

हमने ख़ीर, अकबर, पाये ,
तुलसी, प्रताप, शकर जाये,
जायसी, सूर, टोडर आये ,

मानवता के वे सुफल अमर, जग ने जिनका गुणगान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

है यहीं कुतुब मीनार खड़ी ,
जग-बंध्य ताज की नींव पड़ी ,
दिल्ली की किल्ली यहीं गड़ी ;

चित्तौड़ दुर्ग के कीर्ति-खभ को, किसने गुरुतर मान दिया ?
अपने मन्वन्तर में हमने; अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

नर नर मस्जिद-मदिर सुन्दर ,
पग पग किसान-श्रमिकों के घर,
हिन्दू-तुर्कों से भर , नगर ,

यह नहीं व्यष्टि का विश्व-सृजन, गौरव समष्टि ने दान किया ।
अपने मन्वन्तर में हमने, अपनी संस्कृति को प्राण दिया ।

ब्राह्मण से

ओ ब्राह्मण, ओ वेदज्ञ, ब्रह्म,
ओ अखिल स्रष्टि के आदि ज्ञान
ओ महिमा के उत्तुंग शृंग,
ओ तेजपुज, गौरव निधान ।

ओ तप पूत, त्यागी, योगी,
स्वाध्याय निरत, भूसुर महान ।
ओ आत्मनिष्ठ, आचार मूर्ति,
ओ समय क निष्ठुर विधान ।

ओ साधक, आराधक, याजक,
ओ शास्त्रकार, चिन्तन धुरीण ।
ओ गौरवर्ण, उन्नत ललाट,
ओ अप्रिशिरसा लोहित नवीन ।

शुचि, शात, सौम्य ओ पूज्यचरण
ओ पुण्यात्मा, ओ विगतराग ।
ओ तीर्थ सलिल, ओ शुद्धबुद्ध,
ओ निर्विकार, ओ महाभाग ।

तुम मानव जग मे देवसृष्टि,
 तुम वसुधा मे साकार 'स्वर्ग'।
 तुमसे भव भव में धन्य हुए
 सब नर-नारायण वर्ण-वर्ग।

संस्कृति-मंदिर निर्माण किया
 कर जब मानवता का प्रसार।
 जीवन वाहक बन गये रोक
 पाशत्र । प्रवृत्ति मैथुनाहार।

भव-मानव ने कर दिया तुम्हें
 अर्पित श्रद्धा विश्वासः मौन।
 चरणों मे कितना चढ़ा दिया
 युग-युग ने गौरव कह कौन ?

सत्र भुक्ति-भुक्ति अनुगमन तुम्हारा
 करने को हो उठी व्यग्र।
 चिन्तन-दर्शन के । अप्रदूत ।
 तुम से जग की महिमा समग्र।

गौरव के गौरीशंकर पर
 चढ़कर तुम जब तक निरभिमान
 रह सके, अटल भू अयर। मे
 रक्षित था तब यश-स्वर्णमान।

है यात्र नहीं वह किसे तुम्हारा
 ब्रह्मतेज-सा । महा-शक्ति ?
 घसी, प्रलयकर शकर भी
 हात जिसके सम्मुख निरख ।

वह तपस्तज, वह नमित ओज,
 दृप्त-स्फुर्ति, वह बहिर्जाल ।
 है कहीं आज हे विप्रवर्य !
 वह ज्योति मन्दकर महाकाल !

तुम उठे, उठे उठकर तुमने
 छू लिया हिमाचल का लनाट ।
 तुम बढे, बढे बढ़कर तुमने
 पा लिया विराटों का विराट् ।

कुछ पाने का रह गया नहीं
 तुमको भावी गत वर्तमान ।
 चरणों में सौ सौ धार अर्घ्य
 हो चुका तुम्हारे विधि विधान ।

ह ज्ञानवृद्ध, पर कहीं तुम्हारा
 आज ! अतुल आर्श रूप ?
 आवास स्वय ही बना लिया
 क्यों रुढिग्रस्त भव अन्धकृप ?

संस्कृत वाचा मन कर्म भाव
 की कहीं समुञ्ज्वल ज्योति रम्य ?
 पत्र पत्र विगलित हो रही आह ।
 वह रीति नीति जग-जन प्रणम्य ।

जन तरु तुम अपने का अपूर्ण
 कह दबते जाते थे सतर्क,
 आचार विचारों में गति थी
 पथ निर्देशक थे सोम अर्क ।

वह दुर्घटना थी एक बड़ी,
 जब हुआ तुम्हारा दृष्टिरोध ।
 तुमने नगण्य जग को माना
 थे सर्वोपरि तुम निर्विरोध ।

वह अहभाव ही एक तुम्हारा
 तुम्हें अतल की ओर लींच
 ले गया, पतन की ओर बड़े
 जा रहे सभी से आँसू मींच ।

उत्कर्ष—सतत उत्कर्ष तुम्हें
 पग पग युग युग था सहज प्राप्त ।
 जो कुछ वाणी से निकल गया
 हो गया वही वेदोक्त, आप्त ।

पद्भ्रष्ट हुए जब से परणु
होगय शून्य सध मंत्र-संत्र।
हे बुद्धिप्राण ! निम्नेज मौन
हो पदा तुम्हारा ज्ञान-यंत्र।

शापित निर्वापित सा सप्रति
वह पकलित हो रहा गात,
जो चदन से चर्चा अर्चित
पूजित घदि था साध्यप्रात।

हे रोम राम से समझ पडा
जड़ मोह तुम्हारे आसपास।
तुम धन वैभव से चिपट रहे
अधिकारा के प्रतिचिर उदास !

निर्लिप्त भाव अब नहीं रहा
जिससे मुदीप्त था दिव्य भान।
हे फहाँ तुम्हारा त्यागनिष्ठ !
वह सेवा-मण्डित अतरान !

जिसके चरणाँ फी रज पाकर,
हा जाते थे नरपति निहान।
जिसकी निष्ठा का तप्त सूर्य
तपना था पृथ्वीतल, पतान।

तुम कीदो से रंगते आज
 होकर वैभव के क्रीतदास ।
 तुम त्यागी से भिडुक बनकर
 दर दर पसारते कर हताश ।

हो अतुल ऐपणाआ के पुतले
 लो बैठे तम सार नत्व,
 उस आदि सृष्टि का एक मात्र
 प्रिय मूल सत्य था जो समत्व ।

क्या आज शूद्र से भिन्न तुम्हारी
 सत्ता है हे विश्वप्राण !
 ये शिरा-सूत्र ही शेष, व्यर्थ
 तुम फूँक रहे गौरव विपाण ।

तुम अधकार की अतल गुहा, अब
 तुम प्रकाश का नाम शेष ।
 तुम ज्ञान कर्म-हत, धर्म-च्युत
 युग युग की जडता के निवेश ।

तुम जीर्ण लेख 'गौरव गिरि के,
 तुम ध्वंस, हास, मोहान्धकार ।
 तुम गलित सनातन की छाया
 आकठ-मम तुम कदाचार ।

ये पुण्य तीर्थ सुन्दरता के
 छवि की सीमा ये निर्विवाद ।
 'मे चित्र शिल्प का एक कल्प'—
 जग म यह विद्युत् है प्रवाद ।
 हा गये मूर्त्त चिर स्वप्न यहाँ
 वपुमान कल्पना पर स्वप्न
 दे दे, गढ़ दी मृत्तिका अनेक
 आकृतियों में भर मन्दिर स्वाद ।
 युगयुग की महिमा का प्रसाद,
 ये पुण्य तीर्थ सुन्दरता के
 छवि की सीमा ये निर्विवाद ।

धूप-झाँह छू मंजु समीरण
 सहता जा जीवन की, अनुछन
 घसे हेम-नीलम के जल में
 धोल धाल नव रूप किरण कण
 कलाकार ने ले धूँची में
 किया रम्य निर्माण सुरोचन ।
 हुई अलंकृत धरा पहिन युग
 युग के भाव विभाव विभूषण ।
 विश्व-ताप से तप्त दगो में
 लगा रहा जग शीतल अन्नन ।
 रूप-स्रष्टि के इन चरणों में
 अपित तन, मन, जीवन, यौवन ।
 धूप-झाँह छू मंजु समीरण

बहता, ले जीवन शिल्पी ने
किया रम्य निर्माण सुरोचन ।

हुई रूप की इच्छा जागृत,
छलक पडा उर से भावामृत,
आद्र हो गय पट प्राचीरों,
शैल हो गये धन्य, समाटत ।
नव नव रगो म स्वरूप नव,
नव आलेख, प्राण नव चित्रित—
मध्या, उपा, अहनिश, उडु-शशि,
श्रवर-सागर, दिशि पल शतशत,
रग-मृग, जीव-जतु, नर किन्नर,
तृण, वीरुध, तरु, हिमनग अभिमत
राजा, रफ, रूपसी तरुणी
सहज स्निग्ध सुपमा से पुलकित ।
हुई रूप की इच्छा जागृत
शाश्वत जीवन को सुरमित कर
छलक पडा उर से भावामृत ।

कण-कण रच जीवन का अंकन
किया पूर्ण, सर्वांग सुरोभन ।
आज अजन्ता की भीलों से
लिपटा युग युग का मानव मन ।
हास-विनास, अश्रु सिसकी सब
कहत निज आख्यान सनातन ।

ये पुण्य तीर्थ सुन्दरता व
 छवि की सीमा ये निबिवा ।
 'ये चित्र शिल्प का एक कल्प'—
 जग में यह विभूत है प्रवाद ।
 हो गये मूर्ख फिर स्वप्न यहाँ
 वपुमान कल्पना पर स्वप्न
 दे व, गद श्री सृष्टियाँ अनक
 आकृतियों में भर मंदिर रवाद ।
 युगयुग की महिमा का प्रसाद,
 ये पुण्य तीर्थ सुन्दरता के
 छवि की सीमा ये निबिवा ।

धूप-धौंढ छू मंजु समीरण
 यहता जो जीवन की, अनुद्धा
 उसे हेम-नीलम के जल में
 धोल धोल नव रूप किरण कण
 फलाकार ने ले कूँची में
 किया रम्य निर्माण सुरोचन ।
 इड अलंकृत धरा पहिन युग
 युग के भाव विभाव विभूषण ।
 विश्व-नाप से तप्त दृगो में
 लगा रहा जग शीतल अजन ।
 रूप-सृष्टि के इन चरणों में
 आपित तन, मन, जीवन, यौवन ।
 धूप-धौंढ छू मंजु समीरण

बहता, ले जीवन शिल्पी ने
किया रम्य निर्माण सुरोचन'।

हुई रूप की इच्छा जागृत,
छलक पड़ा उर से भावामृत,
आद्र हो गये पट प्राचीरों,
शैल हो गये धन्य, समान्त।
नव नव रगो में स्वरूप नव,
नव आलेख, प्राण नव चित्रित—
मध्या, उषा, अहनिश, उडु-शशि,
अधर-सागर, दिशि पल शतशत,
रग-भृग, जीव-जतु, नर किन्नर,
वृण, वीरुध, तरु, हिमनग अभिमत
राजा, रक, रूपसी तरुणी
सहज स्निग्ध सुपमा से पुलकित।
हुई रूप की इच्छा जागृत
शाश्वत जीवन को सुरभित कर
छलक पड़ा उर से भावामृत।

कण-कण रच जीवन का अंकन

किया पूर्ण, सर्वांग सुरोचन।

आज अजन्ता की भीतों से

लिपटा युग युग का मानव मन।

हास विनास, अशु सिसफी सध

कहते निज आख्यान सनातन।

बोल रही आत्मा रगो म
चित्र मुन्वर, रेखाएँ उन्मन ।
मृग, रजत, नीलाभ, कृष्ण श्रुजु
एक भगिमात्रा का दर्शन,
सदृज मूर्ति मानव सस्कृति की
एर देता साकार पुरातन ।
कन कन रच, जीवन का अकन
किया पूर्णतम, लिपटा जिससे
युग युग का आकुल मानव मन ।

अज्ञात नाम वे शिल्पकार,
अज्ञात-शील-कुल कलाकार,
है चढ़ा रहा ससार अर्घ्य
वे वदनीय हैं द्वार द्वार ।
कर गये तूलिका अमर, अमर
उनकी टाँकी का धार धार ।
कदरा क्रोड म राशि राशि
सौंदर्य !—एक स्पर्धा अपार ।
रेखा में इतना रम्य रूप,
रगों का यह मोहक प्रसार !
कल्पना स्तब्ध, कुठित वाणी,
भावना मूक, निश्चल विचार ।
अज्ञात नाम वे शिल्पकार
कर गये तूलिका अमर, अमर
उनकी टाँकी का धार-धार ।

जीवन-डग

बढ़ते जान, बढ़त जाने,
 ये जीवन-डग बढ़त जाने ।
 यकने न कभी, रुकने न कभी,
 झुंरने न कभी, बढ़ने जाते ।
 ये जीवन-डग बढ़ते जाते ।

अर्यों, मदियों, मुग, कल्पों म
 ये बार बार ढलने जात ।
 ये जल थल नभ का भेद छोड़
 बस, एक घाल बनने जाते ।
 उरमान-बतन गिरि गच्छों म
 ये बढ़ते श्री' कढ़ते जात ।
 ये 'जीवन-डग बनने जाते ।

ये राष्ट्रों- म लगने जात,
 मरुछतियो म जमते जाते,
 मामाज्यों मे ये फैल-फैल कर
 मुहृढमूल बनने जाते ।

वह दुष्ट-भ्रमण, उगे शास्त्र,
तुमन भा अपना कहा धर्म,
सहगमन मान बैठे ममो
नारी ! यह निरिखत पाप कम ।

यह विधि विधान का भारग्य
इसका क्या भाये पिङ्ग-भराल ?
इसमें कुग काँटों का अयाध
शामन चलना है सर्वधान ।

फूला का शूला से विनारा,
शैशव पर पत्थर का प्रहार—
वे कौन धर्म, वे कौन शास्त्र,
कहते इसको जा धर्म द्वार ?

प्रिय की वह स्मृति किनना पवित्र,
कितना अनूप वह दग्ध प्यार
नन्दन हो सफता विश्व-सक्ष
दोकर उसका अविराम भार ।

ओ मृत्युसगिनी, एक धार
ठहरो, क्षणभर देगा विचार,
वह नित्य सत्य है लिये कौन—
यह चिन्ताभरम या मधुर प्यार ?



जीवन-डग

बढ़ते जाते, बढ़ते जाते,
ये जीवन-डग बढ़ते जाते ।
बढ़ते न कभी, रुकते न कभी,
बढ़ते न कभी, बढ़ते जाते ।
ये जीवन-डग बढ़ते जाते ।

अद्वैतों, सदियों, युग, कल्पों में
यं धार धार चलते जाते ।
ये जन धन नभ का भेद छाड़
बस, एक धान चलते जाते ।
उत्थान-पतन गिरिगर्भों में
ये बढ़ते श्री' बढ़ते जाते ।
ये जीवन-डग बढ़ते जाते ।

ये राष्ट्रों में उगते जाते,
संस्कृतियों में जमते जाते,
साम्राज्या में ये फैल फैल कर
सुदृढ़मूल बनते जाते ।

ये ज्ञानो में, विज्ञानो में
 नित नये नये तनते जाते ।
 फिर दर्शन के भीने पट में
 प्रसरेणुरूप छनते जाते ।
 ये जीवन-डग, ये जीवन-डग,
 ये यष्टि सुदृढ, दुर्बल डगमग,
 इनके नाना रूपो से जग ।

इनका घसत से मोह नहीं,
 इनको पतझड से द्राह नहीं,
 फूलो की इन्हें नहीं ममता,
 मन नहीं कहीं इनका धमता ।
 ये तो अशिथिल अश्रान्त पथिक
 निश्चित पथ पर चढते जाते ।
 ये जीवन-डग वढते जाते ।

ये शैशव म करते श्रीडा,
 यौवन में इनकी श्री त्रीडा,
 ये जरा-सुरा के मतवाले
 इनका मज राग रग भाते ।
 गँडहर मे ये जनपद रचते
 जनपद अरण्य ये कर जाते ।
 ये जावन-डग—सर्वांग सुमग,
 वढते जाते,-- वढते जाते ।

ये निम्न नया, अभिनव, अनुपम
 से नये हृदय रूपन जाने ।
 ये नये गन्ध, नय मुक्त, धार्मी
 नय, नये द्रव्य मज्जा जान ।
 ये एगर इगर, यं तगर-नगर,
 ये देश-देश रमते जाने ।
 ये जीवन-दृग गमने जाने ।

कृमि-कीट कर्मी, गज-भाण कर्मा,
 गृध्र-वीरुध, उदधि, अयाह कर्मी,
 ये पगडंडी की राह कर्मी
 प्राणों का घट टरते जान ।
 ये जीवन-दृग घटते जाने ।

मानव हैं जिसमें एक धूर्त,
 अयुधि अयाह । मरने जान ।
 ससृति निसर्पी हैं लहर-ध्रहर
 ऐसा प्रयाण ये उमगान ।
 ये महातिमिर का उर विदीर्णकर
 नय प्रकाश-धैभव लाते ।
 नारकचय का ये रजत चूर्ण
 नभ के अचल में छिनराते ।
 ये जीवन-दृग घटते जाने ।

प्रस्तरयुग इनका एक धरण,
 धर्नरयुग इनकी शिल्पफला ।

इनकी लीला का लाम प्रलय
 वृत्ति महासमर इनकी मफला ।
 ये जीवन-डग व्यापक दुर्धर,
 अविराम, अबाध, अरुद्ध, अपर—
 सृष्टा ये अग जग के सुन्दर ।
 इनके पञ्च चिह्नो से चिह्नित
 अवर-सागर सब इठनाते ।
 ये इच्छा की जलती ज्वाला
 जड़ में चेतन करत जाते ।
 ये जीवन-डग घडते जाते ।

श्रद्धा

ओ अद्भुत ! ओ पक्षि बहिष्कृत !
 तू है भारत के जड़ प्राण ।
 मर्दियों की अवरुद्ध प्रगति में
 ज्वार उठे, आये नृपान ।

नर, नारायण का प्रतीक तू
 जीवन का अभिगाप अरे !
 तू छू सद्गता क्यों नहीं उसे
 जो अनाचार अविचार करे ?

तू युग युग से पिस्तवा रिसता
 हो गया रिक्त, साधन विहीन ।
 तेरे शोषण से पीन-पुष्ट
 ये धिर उद्धत दूषित कुलीन ।

ओ श्यामवर्ण ! पीड़ित, वंचित
 ओ सतत छुधातुर ! ओ विषम !
 तेरे शरीर पर मांस नहीं
 तेरे हाथों में नहीं अस्त्र ।

तू ज्ञान सभ्यता से धचित
तू जीवन्मृत, चिर अधकार ।
तू एक बार घट कर हाथों
से ग्वाल रुद्धि क रुद्ध द्वार ।

फाने कोन में नव प्रकाश
भर दे जीवन का नव प्रभात ।
इस दलित गलित मानस की
नीत काली वनशा रात ।



आर्ष संस्कृति

उर्वरा आर्ष संस्कृति भूपर
गगा यमुना के स्रोत सजल ।

ऋषियों के आश्रम, यज्ञ-याग,
तत्वालोचन, चिन्तन, विराग,
वह आत्मशोध का दायभाग,

पीडित, मानवता को विराम
दुस्तर जीवन का पथ सरल ।
उर्वरा आर्ष संस्कृति भू पर
गगा यमुना के स्रोत सजल ।

अत प्रेक्षण कर दृष्टिरोध
हो, घना प्रगति में जड़ विरोध ?
भूले हम कब कह लुधा बोध ?

अपना सक्रिय वैशिष्ट्य लिए
बहु पार किए हमने जल-थल ।
उर्वरा आर्ष संस्कृति भू पर
गगा यमुना के स्रोत सजल ।

तरु टाया, विपन अरण्य-वास,
 शशपद-सहस्ररगा, गिरि विनास,
 मरि-भ्रोत अट्टा दुर्गम निदाम

पग पग इग टग गिर गिर उठ उठ
 हैं सयल हुए ये पग दुर्बल ।
 उर्वरा आर्ष संरुति भू पर
 गगा-यमुना प म्नात सजल ।

फंदरा-भोद मे अज द्वार
 किलनी दुप्परता का प्रसार ।
 है याद आद व भव्य भार ।

गुचि सहज स्निग्ध मुसकाननिण
 इन ओठा न ही पिया गरल ।
 उर्वरा आर्ष संरुति भू पर
 गगा यमुना क म्नात सजल ।

प्रस्तर युग की आरुति विपल,
 आश्रुत मात्र ही भोज्य अल,
 मुकुनित नव मानवता प्रसन्न

रँग उठा विश्व का शितिज प्राप्त
 निकले युगा-त के चरण चपल ।
 उर्वरा आर्ष संरुति भू पर
 गगा यमुना के म्नात सजल ।

लगी यात्रा, लम्बा प्रवास,
सदियों की गणना का न आस
उस सृष्टि-स्रोत के आसपास—

गिर पटा जहाँ पर बीज एक
है खड़ा वहीं पर धृत्त प्रवल ।
उर्वरा आर्ष सस्कृति भू पर,
गगा यमुना के स्रोत सजल ।

ऋत अमृत पात्र हम स्वस्थ सजग,
रचते आये नित नवनव मग,
है सृष्टि हमारी ही यह जग,

चीनाशुक में सर्व पलट दिये
पाये थे पथ म जो वल्कल ।
उर्वरा आर्ष सस्कृति भू पर,
गगा-यमुना के स्रोत सजल ।

यह नव्य भव्य जीवन विकास,
विज्ञान ज्ञान का शुचि प्रकाश,
सभ्यता-सरित का रम्य रास—

पथ द्वीप बना, जब प्रलय एक
लीलने खड़ी है विश्व सकल ।
उर्वरा आर्ष सस्कृति भू पर
गगा यमुना के स्रोत सजल ।

११

तम तोम घोर तर वज्रपात,
 भक्ता भक्तीर, विभ्रात गात,
 क्षुब्ध नहीं हिमालय की बिसात,

आश्वस्त कर रहा एक हाथ
 बापू का दे शाश्वत सबल ।
 उर्वरा आर्ष सस्कृति भू पर
 गंगा यमुना के स्रोत सजल ।

मोहेंजो दडो

तुम विस्मृति थे उर में विलीन
वन से साने थे मूक-मौन ?
इतना अनूप वैभव लेकर
मूल्याकन तक कर सका कौन ?

सदियों के तिमिरावरण तले
निश्चेष्ट और तुम रुद्धस्वास—
थे समाधिस्थ किस हेतु आह !
किस योग सिद्धि का था प्रयास ?

किस युग थे तुम अवशेष जीर्ण,
किस सस्कृति के अधमिटे लेण ?
तुम कल्पों का इतिहास लिए
जीवित हो किसको देख-देख ?

पापाणकाल से सिसक रहे
उर पर ले मिट्टी का प्रसार ।
जन्मीं, मिट गई सभ्यताएँ,
जनपद बसकर वन गये क्षार ।

अथ निद्रा गेप तक नहीं रह
 हो गय अटल नागाय अग्य ।
 नम-चुना व प्रासा कहीं
 न् दुर्ग पड़ मय आन धरत ।

य आज विनेता कहीं, उड़े
 पग पग निनकथे ध्वज निशान ?
 सब अधरात्रि का स्वप्न मात्र
 रह गय आन ह महाप्राण ।

'मुझे का हेग' तुम्ह कौन
 कहता, तुम ता हो चिर मीन ।
 जीवनकी शाश्वत चिनगारी पर
 तब प्राणों की पड़ी नींव ।

वसुधा ने अपना दृश्य चार
 जिसका अन्तर म दिया ठौर
 तुम युग-युग की सपत्ति सदा
 कर सकना तुम्ह न काल कौर ।

इतनी मानव अभिलाषाया का
 शिलीभूत सौकर्य कहीं ?
 इतना सजीव, इतना सफरुण,
 इतना मामिक सौकर्य कहीं ?

तुम वेद पुरातन—नहीं, नहीं,
 तुम तो सस्कृति के आदि काव्य ।
 मानव प्रयास की प्रचुर राशि
 अधलोन चकित सत्र भूत भाव्य ।

दारुण दुर्भाग्य कौन ऐसा
 जिससे तुम फिर फिर छले गये ?
 तुम भूतल के थे शिरोरत्न
 किस गहन गर्त में चले गये ?

हं याद जलामात्र कितने
 जिनमे तुम, अत्र तक चुके डूबे ?
 भूचालो का अनुमान नहीं
 जिनकी हलचल भी रही खूब ।

तो भी तुम जीवन का प्रदीप
 रख सके सतत यो ज्योतिमान ।
 तुम धन्य, अक मे लिए रहे
 युग-युग की सस्कृति का प्रमाण ।

कितनी अक्षत, आत्माओं के
 आलिंगन का ले रजत-पाश ।
 मिट्टी के इन ककालो में
 तुम गूँथ रहे हो अश्रु-हास ।

नव सृजन

धम शिना पर नई सृष्टि धन ,
उभर छठे जीवन फ स्पन्दन ।
नयन गोलकर देगा तो कवि !
विगलित तन मे कैसा यौवन ?

फून धूल म, यही विश्र त्रम ,
अमर न मानर अमर परिधम ।
कहाँ उपल वे कुसुम कलित कर,
चिर मजीव ह्य चिप्रित अरुपम ।

जरा और क्या परिगत यौवन,
मृत्यु कुछ नहीं परिगत जीवन !
धर्म-रुद्र पलपल नवीन श्रौ'
प्रगतिशील यह विश्व सनातन !

मानव

संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन ।

नव कला, शिल्प, साहित्य अमर
नव गीत, , नृत्य, संस्कार सुंदर

ये चिर स्वतन्त्रता के प्रतीक, संस्कृति उपवन के रुचिर सुमन ।
संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन ।

क्षण क्षण अणु-अणु मधु-गंध भरा
नव सृष्टि-स्रोत कल छंद भरा

पुलकित प्राणों से वसुंधरा, सदियों से सुन्दर सर्ग-सदन ।
संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन ।

आदर्शों से अनुराग उसे
तथ्यों से सहज विराग उसे

तालों से प्रतिभा को गड-गड, वह करता है उसका वन्दन ।
संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन ।

वह जीर्ण-पुरातन का प्रेमी
वह नव्य भव्यता का नेमी

इस रूढि-पथ पथी नर का चिर गाति-काति के लिए नमन ।
संस्कारों से निर्मित मानव, विश्वासों पर अर्पित जीवन ॥

ना, सुनो सर्वहारा अराप
 तुमको रचनी है गई स्रष्टि,
 हा जहाँ न प्राणों का विनाप,
 हा जहाँ न शोषण की सुदृष्टि ।'

ना, सुनो सर्वहारा अराप
 तुमको करन हैं बड़े काम ।
 फिर नये मारे से अर्थनीति
 निर्धारण करनी है ललाम ।
 उत्पादन, वितरण के तमाम
 माघन का हागा नया रूप ।
 धरती पर कृपका का प्रभुत्व,
 ब्रम के होंगे बस भूमिक भूप ।
 हांगा न वर्ग-सघर्ष, और
 सचा का हांगा स्वयं अंत ।
 रहना हांगा क्षण-क्षण सतर्क
 जी उठे न फिर शासन दुर्गज ।
 ना, सुनो सर्वहारा अशेष
 माहूकारी का दुआ नाश ।
 दाढ़ी चोटी का निसे गर्व
 हो गया शिथिल बह धर्म-पारा ।

लो, मिनो सर्वहारा अशेष
 हम एक ध्येय, हम एक जाति ।

पुराकाल

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
 कवि देख रहा अति दूर—दूर।
 होता चिराट्ट है जहाँ बुद्ध
 औ' तथ्य जहाँ बनता सरूर।
 वह पुराकाल था अन्धकाल ;
 वह आदि धर्म था क्रूर कर्म।
 आग्नेट और दलितान-गुग्म
 उसकी रक्षा के रहे वर्म।
 ककड, पत्थर, रत्न, चन्द्र, मेघ,
 सरि, सर, वृण, तंरु, वीरुध, समीर
 किस किस को पूजा नहीं स्वार्थ
 प्रेरित मानव ने ही अधीर।
 कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
 कवि चला खीचने एक चित्र।
 वह पुराकाल था अजब काल
 उसका सज कुछ ही था विचित्र।

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
 कवि देख रहा अरिों पसार
 उस शिलाखण्ड की ओट लिए
 करता पीछे से कौन वार ?

वह विडम्बना है ! होगया शत्रु
 जो था निरीह, जो था निरभ्य !
 शत्रु नेता का अधिकार प्राप्त
 वह स्वान भीष ले करे बस्य ।
 कैसा मुन्दर यह पुण्य कार्य
 फिर साथ शास्त्र-सम्मत विधान !
 गाये दुर्गिया हो मस्त क्यों न
 अपने याज्ञा के न्युयग-गान ?
 कर मुक्त राजाओं के गवाक्ष
 कवि मुग्ध दृष्टि में रहा चाह ,
 वह पुराकाल था अन्धकाल ,
 था तन्वमान उसमें अथाह !

कर मुक्त राजाओं के गवाक्ष
 कवि फिर रहा वह यमकुण्ड
 अपनी भीषणता से ललाम
 का दस दुआ गया हँड-मुड ।
 वह पुराकाल था अन्धकाल
 वे हातागण थे रजलिप्सु ,
 गया गया लन्द ही यमकुण्ड
 हो गये प्राप्त व माक्ष इप्सु ।
 लपनप हाती थीं लाल लाल
 व जिहा जैसे महाकाल ,
 साक्षी भी उनकी नहीं आज
 प्रभुता-महत्त्व का क्या सवाल ?

युग युग गायगे कीर्तिगान
 चाफी महिमा के, अनायास ।
 कर मुक्त शताब्दों के - गवाक्ष
 कवि देख देख हो रहा स्तब्ध ,
 बुद्बुद्-सा । कैसा दुश्चा अस्त
 साम्राज्य धर्ही वह सहज-न्त-ध ?

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
 कवि देख रहा अधरिने, फूल
 सहते हैं पैरों के प्रहार ,
 सहते हैं कानों के त्रिशूल ।
 वह पुराकाल था तमस काल
 बलवान धर्ही थे देवदूत ।
 निर्बल निरीह, कपित विपन्न
 आतक-राज था धनीभूत ।
 बावू पाते थे जहाँ मान
 इत्यायों के सिर रहा छत्र ।
 चोगेज सिक्न्दर की मुकीति
 वह रहे खन्न के रक्षपन्न ।
 कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
 कवि बाँच रहा है पुराकाल ,
 जा जीर्ण लेस हो गया स्वय
 सा रहा जिसे कृमि-कीट-जाल ।

कर मुक्त शताब्दों के गवाक्ष
 कवि है रहा वह चिंता भाले ,

धक धकजनता है जहाँ फूल-
 मी कामन सिंगुन जवन याम ।
 वह पुराकाल था अघकाल
 नारिणी दृष्ट का जहाँ गाल
 बन कर लुटी जाती, मनुष्य
 होत ध पकर से दमाल ।
 पाजारों में पिचका गुनाम
 पर ग लौंढां किरती धनक,
 या पदर जहाँ दवा सुरम्त
 आका की ध्रु^१का भंगणक ।
 कर मुक्त शताब्दा के गवाण
 कवि दस रहा ही मजल दृष्टि,
 जिन पलकों से मरते अजघ
 गोवा, वे करते अम, दृष्टि ।

फर मुक्त शताब्दा के गवाण
 कवि दस रहा पनके पसार,
 अकबर-नालीम का रमणकाल
 औ' शाहजहाँ का प्रथुल प्यार ।
 वह पुराकाल था अघकाल
 औरंगजेब मघाद, और
 दाराशिकोह का छिन्न शीरा
 भूलुठिन किरता ठौर-ठौर ।
 दादी चोटी में जहाँ धर्म
 का निर्णय बग्नी थी कृपाण,

इस्लाम छोड़ या समा कुन
 मस्त काश्मिर क यिक प्राण !
 कर मुक्त शानाचो क गदास
 कधि देरा रदा व रचगात ,
 मार्शा धन कर मष रह घोल
 जा तध्य आउ तक ये न शात ।



शूद्र

वर्णाश्रम को रीढ शूद्रजन
 अति श्याम वर्ण, सुन्दर शरीर,
 सुगठित, बलिष्ठ भुजदंड, धीर—
 मन स्वीय कर्म रत
 अविरत,

सृष्टा समाज, सस्कृति, जीवन ।
 इनका कृतज्ञ जगका करण करण ।

६ ।

ये कर्मकार, ये शिल्प-स्वस्थ मन,
 कर कर ये चिर-तम-त्रास प्राप्त
 भरते युग-युग जग-जग प्रकाश
 तन होम, रोम प्रति ॥ ३५
 ससृति,

रच पुर-पट्टन प्रासाद ग्राम
 रच शिल्प फल्प आलेख-धाम
 गृह राजमार्ग गढ तोरण—
 सभ्यता शिगर वर धंदन ।
 ये वर्णाश्रम के प्राण शूद्र जन ।

नीच नर्ती ये शूद्र, महानन ।
 ये समान संसृति निर्माता
 सुतिसा के देते स्वरूप घर,
 लजु का गौरव सुन्दर,
 पागसमणि इनके युग घर
 गम्पर्श मात्र से हेम-दीर हागे हुगातु श्री' परवर ।
 ये समान की मांभपेशियाँ, ये दृढ़ धधन ।
 धर्णाश्रम की धुरी शूद्रजा ।

ये धर्मात्तप, चाा - शीत
 सहते सस्मित, अखिरत अर्भीत
 ये अधक कार्यरत

पशुवत्

निमाणलप्र युग-युग मे,
 तारुने न नम की आर, नमित सिर
 लम्बने निरचल भू का ।
 मन आकांक्षा-शुक्त, रिक्त स्वप्ना से लाचन—
 ये समाज का शकट खींचते, महते धधन ।
 धर्णाश्रम के प्राण शूद्रवन ।

— ११ —

शत असत, शत धीधम, शरदू शत,
 शन शत धार - हुण अतीत शत,
 रहे सिन्तु ये अडिग स्थाणुवत
 ५ स्पन्नित

चलित

इनके न अचल मन

भार—निरतर भार ढो रहे जन तक जीवन ।

नगे भूये किन्तु न इनके उर म विप-श्रण

ये समाज की नींव शूद्रजन ।

जीवन्मृत ये कलाकार

वैभव विनास से निर्विकार,

अविकल्प ध्येय, अविकल्प दृष्टि

आदर्श एक ले लम-सृष्टि—

ये मानवता के उन्नायक,

ये कुशल विश्वकर्मा जीवन सस्कारों से प्रेरित

ये स्वयं नीड़ में घस परहित रचते बहु भव्य दिव्य जनपद ।

करते पद पद

नित श्रम से घसुधा को पावन ।

नीच नहीं ये शूद्र, महाजन ।

अनगढ़ प्रस्तरखडों को गढ़

ये नव, नव प्रतिमाँ सुन्दर

रख देते, ई सन्मुख सजीव-सी स्वयं बोल उठने को आतुर,

मंदिर में स्थापित कर जिनको सतत पूजते हैं सवर्णजन ।

किन्तु न जाती, दृष्टि कभी इनके जीवन पर,

महिमा का यह भजन खडा है जिनके ऊपर, ।

युग युग से दे रहे अर्घ्य प्राणों का पावन,

पतित नहीं ये शूद्र, महाजन ।

गडे अमित जो कुतुब, ताज, मन्दिर, गिरजापर,
 गड़ पिरामिड अपर महीधर,
 र्प-रुद्र जो बग बरा का लेकर गौग्व
 गड़ लेकर इन्ह न मृग्यन्
 उन सयका कौलीभ्य इन्हीं क रक्तमास से पोषित ।
 इनकी पूजा करो, यही हूँ पूज्य मनातन
 त्याज्य नहीं ये शूद्र, महाजन ।

यहा हली, कृषि-कर्म यही कर-
 उपजाने बहु अन्न, धान्य, धन ।
 यही कातने सूत, यही बुनते पाटावर,
 जनसमाज के यही सुधा-लज्जा-सरक्षक ।
 द्वापर, त्रेता, कृतयुग से वसुधा का मयन
 करते ये अविराम -

सतत सह-सह उत्पीडन ।
 घृण्य नहीं ये धन्य शूद्रजन ।
 इनकी पूजा करो, यही हूँ पूज्य सनातन ।

निराल नैन्य, दुर्भाग्य, दुरित, दुःख के ये बाहन
 जर्जर तन मन प्राण, आज ये दीन, अकिंचन !

इह उठाओ—इन्हें नरक से लाओ वाहर
 भोग भोग कर जिसे, स्वर्ग-सुख बाँटा घर-घर ।
 हो सकने क्या उच्छ्रय इन्हें हम शिरोधार्य कर ?

यही आज का धर्म, यही शुभ कर्म यजन,
 इनकी पूजा करा शूद्र ये पूज्य सनातन ।

ध्वस्त सस्कृति पर

यह ग्राम वही, यह ठाम वही,
जीवन शिल्पी का धाम वही।
अकित हरियानी ग्रेन यहाँ,
गंगा-अमुना की रेत यहाँ।
काँटों की काली घाट यहाँ,
मावन उन घटा प्रगाढ यहाँ।
अनरचु घी वरगढ पीपल,
ये आम नीम के दल के दल।
ये इमली और बयल घडे,
नरकुन के 'भुरमुट' गुँथे सडे,
बुलबुल गावी, गाते मयूर,
कढ वया जाज से रहे घूर।

यह परिचित चिरपरिचित प्रदेश।
मेर बचपन का, उपनिवेश।
यौवन का क्रीडा धाम सुभग,
प्राणों का पुण्य विराम सुभग।
यह ताल वही जो भरा नीर,
यह चिटप वही जो गढ़ा तीर।
उस ओर जलाशय के सुन्दर
सारस की जोड़ी गेले पर
जा रही उड़ी सरसर फरफर।
वह कौन पडा सिर नीचा कर ?

रग्ना, श्या, वृद्ध कदा कदा !
 क्या नर्क यही यन् पूर्ति यदा !
 मन्त्रि प्रांगण में तीर्थ मन्त्रि—
 से पुत्रिप्राती या अग्रिम ।
 वह धूमिमा, वह भूलु टिन,
 दापेत मान-गरिमा कु टिन ।
 कथा प्रतिमा वह श्रेय-मूर्ति,
 नर-नारी की विश्वास पूर्ति ।
 चिर अर्चित चरित, अर्घ्य-दान ।
 सस्रति द्वित ले शरणात शान
 क्या पडी हुई आहत श्वनत
 विद्वानाग औः वह क्षतविधत ?

वह कहीं गया पावन मंदिर
 युग-युग की तिसमें अर्द्धाधिग ?
 वह कहीं गड चूड़ा उन्नत ?
 व स्पर्ण कलश जो शुभ्रसतत ?
 थी मरिन्द भी ता यही एक,
 सादगी रूप, प्रतिमा विवेक—
 अर्द्धा रहती थी जहाँ सदा,
 वह पाक पवित्र प्रशान्ति प्रदा ।
 अर्पिया थी सी श्रुजुता मचित
 वह श्वत श्मश्रु मुल्ला परिचित ।
 अब नहीं नीगने मुझे यहाँ,
 व जड़ चेतन रागये कहीं ?

वे कहाँ गये मोहन, मुनीर ?
 वे कहाँ गये रहमत, वशीर ?
 वे कहाँ गये मुरली, चदन ?
 वे कहाँ गये 'जीवन, नन्दन ?
 यह तो भारत का ग्राम नहीं,
 हिन्दू मुस्लिम का नाम नहीं !

पीते थे 'वैठ' यहीं हुक्का,
 बुद्धू हकीम लिगते रुक्का
 कुछ सोच साच, कुछ रुक रुककर
 फिर देस देस, फिर झुक झुककर ।
 वेगम, खानम, रानी बेटी
 चलती, 'फिरती' 'सोती', 'लेटी'
 वे स्वप्न आज हो गई कहाँ ?
 हँस खेल खेल रो गई कहाँ ?
 पचांग खेल, गिन 'मीन-भेष ।
 भट्ट देस देस घर हस्तरेस ।
 करते जो भूत-भविष्य कथन ।
 थे यहीं ज्योतिषी पचानन ।
 थी शिशुशाला भी यहीं खडी ।
 घटे बजते' थे घडी घडी ।
 धाँसो के आगे अमर वही ।
 जो चिह्न शेष तप 'नहीं रही ।
 यह दूद गया कच्चा मकान
 यह भग्न पडी पक्की दुकान

जल गड़े भापड़ा की फतार
उड़ रही जहाँ पर शुष्क शार ।

बसत किसान, भावा, कुम्हार ,
टाकुर, घाम्जन, मोदी, लुहार ,
धदड़, नाइ, पाटी, बहार ,
कायथ, अहीर धुनियाँ, अमार
क्या आन किमी के चिह्न शेष ?
जो चलत फिरत थे हमेश ,
जो रहते बसत यहाँ मतत ,
हा गये फाल के माघ तिगउ !
व कहीं गय, वे कहीं गये ?
व परिचित तन, मन नये नये ।
व नर नारी, वे बाल-शूद्र !
व म्नेह स्निग्ध, व माह बद्ध !
अपने अपन का मधुर चाह ,
तेरे मेर की प्रूर खाह !
मथ जीते जा की आह-वाह
मिट गई, न घाकी यह, प्रयाह !
घर आँगन कप्रिस्तान बने ,
मदिर मस्जिद घीरान बने ।
सब हिन्दू-मुस्लिम साथ-साथ
सो गये यहीं कर अमर गाथ !

य शत्रु-करा के अमित लख
रह गये, न कोई बची रेत

जल गई भापडा की कतार
उड रही जहाँ पर शुष्क क्षार ।

बसते किसान, घावी, कुम्हार,
ठाकुर, बाम्हन, मोदी, लुहार,
बढई, नाई, काछी, कहार,
फायथ, अहीर, धुनियाँ, चमार
क्या आज किसी के चिह्न शेष ?
जो चलन फिरते थे हमेश,
जो रहते बसते यहाँ सतत,
हो गये काल के साथ विगत !
वे कहाँ गये, वे-कहाँ गये ?
वे परिचित तन, मन नये नये !
व नर नारी, वे बाल-वृद्ध !
वे स्नेह स्निग्ध, वे मोह बद्ध !
अपने अपने को मधुर चाह,
तेरे मेर की क्रूर डाह !
सब जीते जी की आह-वाह
मिट गई, न घाकी वह प्रवाह ।
घर-आँगन कब्रिस्तान बने,
मन्दिर मस्जिद वीरान बने ।
सब हिन्दू-मुस्लिम साथ-साथ
सो गये यहाँ धर अमर गाथ ।

ये शानु-भर्रा क अमिट लख
रह गये, न कोई बची रख

घर घर जीवन के अमर चरण
कर दें ज्योतिष अर्जुन के चरण ।
यह महानारा, यह खड्ग प्रलय,
ए उठा आज तो मंगलमय !

इतिहास

जग को यह इतिहास
 चाहिए नहीं, कि जिसमें सघाटों के गीत ।
 दस्युओं की गाथा अविनीत,
 न जन-जनपद के अमु पुनीत ।
 विजय के गीत,
 समर उद्धोष,
 प्रचढाक्रोश,
 जिगीषा, हिंसा का व्यापार ।
 यह विपाक इतिहास ।
 उठा दी घर-घर में प्राचीर ।
 जन जन से औ, जाति, जाति से
 वश वश से छिन्न ।
 देश देश से, राष्ट्र राष्ट्र से,
 हृदय हृदय से, भिन्न ।
 दिन कण कण,
 अणु अणु उच्छिन्न ।
 न समता लेश,
 प्रेम निरशेष ।

जाति, राष्ट्र, कुल वर्ग, वर्ण
मन कल्पित नाम ।

यह असूत इतिहास ।
छुएगा इसका कौन अजात ?
सिकंदर का यह करता मान,
पराजित हाग का अपमान
जबकि दोनों ही व्याघ्र समाप्त
कर गये लासों का बलिदान ।
मूल से रंगे हुए हैं पृष्ठ,
रख्ये से लिखा हुआ वास्तान ।

फाइ पैंको इतिहास ।
हमें तुमसे, तुमको हमसे करता जो दूर
दे रहा वर्गवाण को जन्म,
घुटी के साथ,
न जिसके पास मिलन-संदेश,
न जिसके साथ प्रेम-सद्भाव
फूट ही जिसका मोहनमंत्र,
विभाजन प्राण ।
यह राष्ट्र-जाति उथान
आज किसका कर्तृत्व ?
क्या लगे नहीं इसमें अर्जुन-कर प्राण ?
मिट नहीं गय क्या कीड़ों से पिसकर,
पिसकर मानव-समूह अस्नान ?

आह भी जिनके मुख में फड़ी नहीं
 किन्तु वहाँ वे आज, वहाँ उनके स्मारक ?
 ये ताज, कुतुब, ये दुर्ग, भवन, आलेख
 कहो किसके प्रसू से निर्मित ?

कहाँ है वह इतिहास ?
 मुनाँ कर शाहजहाँ का तख्त
 छोड़कर जहाँगीर का पानपात्र
 युग युग र लोकजीवन का अश्रु-हास
 चित्रित करदे यथार्थ ।
 श्रेणी-वर्ग हो न जहाँ
 वर्ण-राष्ट्र हो न जहाँ
 जनता जनार्दन हो ।
 कृषक, श्रमिक, सत, कारीगर हों समस्त
 एक ध्येय, एक ध्यान,
 एक श्रेय, एक ज्ञान ।
 पक्षपात हो न रच
 एक घाणी, एक कठ,
 एक तानपूरे पर,
 गायें जायें गीत जन-जन के ।
 होगा वही इतिहास,
 सत्य शिव सुन्दरम्—होगा वही इतिहास ।

श्रुतेवासी

आ ज्ञान-मानसर, व मरान ।
 ऋषि आश्रम के अधिष्ठित पून ।
 पा राम रौम निमका पुनीत
 आचार्यन्व की धरण धून ।
 ओ सत्यकांभ जानाल । आप
 वह कहीं यज्ञ का गध धूम,
 वेदी पर तनता था बितान
 उन्मत्त मय सा घूम घूम ?
 व सरस्वती के उभय वृत्त
 महते थे जीरा का प्रवाह ।
 पर ब्रह्मज्ञान का विमल श्रोत
 भरता ही ता आया अथाह ।
 तुमन समिधा चुननीं अवरय
 सध्या से पहते महाभाग ।
 पर यज्ञपुरुष कथ हुआ तुष्ट
 लालुप है अब भी रक्त राग ।

तुम आदि पुजारी एक धार
 तुमन अरण्य को प्राण दान—
 देकर, जीवन को स्वर्ग तुल्य
 सा उठा दिया महिमा-महान ।

होकर जिहारा के प्रसून
 मार्ग प्रभात तुम गढ़ मौन,
 होठा पर मन्त्रोन्चार हाथ
 प्राणों में प्रसुक प्रणति कौन ?
 पर शुक्ल में तुमने प्रवेश
 मयम का जो दृढ़ शिला-भ्यास
 कर दिया,—विषय का रोम राम
 क्या भूल सकेगा अपनायास ?
 हे हरे-भरे अम्बुत्य, और
 घट निप गढ़ हैं जटा भार,
 अर्था में तिरता हैं अतीत
 मांसों में मंचित विगत ज्वार ।

आ मननशील, कैसा अपूर्व
 गगातट का वह प्रथम प्रातः ।
 प्राची के रवि के माथ साथ
 तुम प्रातः हुए थे शुभ्र गातः ।
 अञ्जु रूप, सौम्य शोभन स्वरूप
 साधनाकुज के पारिजात,
 वरदान उपा के से अनूप
 होगया घन्य द्रुम पात-भात ।
 वह मुज-मेरला से निवद्ध
 कटि-पेश, विश्व का लिए प्राण
 रर सत्य शोध में सतत लीन
 हो उठा आप ही तो महान ।

फिरणों म आभा का प्रसार
 पुलिनों मे पैरों के पुनीत
 हैं निखे लेख, ऋकृत प्रदेश
 गा-गाकर तब उद्गीथ-गीत ।

तुम कुशासीन, जागृत-समाधि
 ऋषि याज्ञवल्क्य के आसपास
 ले कभी तीर्थजल, कभी पुष्प
 पहुँच रहते हा अनायास ।
 सामश्रवादि, क्या तम्हें जीर्ण
 कर सकता है यह जीर्ण काल ?
 सदियों के फलको पर विशाल
 जाग्वल्यमान वह भव्य भाल ।
 वे अग्निहोत्र के उभय पार्श्व
 ले जहाँ खुवा तुम समासीन ।
 भरते हैं जीवन में प्रकाश
 उर-ज्योत्स्ना मे आशा नवीन ।
 श्रद्धा की प्रतिमा सहज सौम्य,
 आचार-साधना के प्रतीक ।
 तुमसे सब विद्यापीठ धन्य
 तुम ब्रह्मचर्य की स्वर्ण-लीक ।

तुम युग युग के पथ के प्रदीप
 ओ युवा मनस्वी, विश्वरूप ।

तुम सृष्टि-बीज का रस साध
 बह बह बह छाया खीर धूप ।
 तुम भरद्वाज, गौतम, अगस्त्य
 श्री' कपिल-बन्ध के शिष्याग्र ।
 तुमसे मलयुग का वृष्य धान
 तुमसे हाथर का पुण्य गात्र ।
 तुम लक्ष्मिणा के शक्ति-चिह्न ,
 तुम मायंदा के ज्ञान-शोष ।
 तुम से ही तो कारी प्रयाग
 युग-युग से पात रहे शोष ।
 तुम शून-बिजाट के साध-साध
 रहकर भी विष्णुन में प्रवीण ।
 का प्रकृति-मुजारी, क्यों अरण्य
 की छायावन तुम आज सीण ?



विक्रम महान

विक्रम, तुम थे मघाट—राष्ट्र
का आत्मा के सघाट, सत्य ।
कहता है मन्त्रियों का प्रवाद
कहते हैं विग्रहे हुए कृत्य ।
हो जायें यदि इतिहास मौन
मिट जायें यदि मन शिलालेख,
तो भी क्या धूमिल रक्षवर्ण
हो सकता है यह वधरेख ?
खाता है खाये कालदर्श
है अमर राष्ट्र का यश-सम्भ
उसके घरणों में लोट लोट
मिल गये धूलि में दस्यु-सम्भ ।
डोली धरणी, डोले पहाड़,
उन्मथित सिंधु का अन्तराल,
तो भी तुम अविचल रहे किन्तु
साक्षी है विस्तृत पुराकाल ।

साक्षी है जन, जनपद, जहान,
साक्षी युगयुग का कीर्तिगान ।
किस पुण्य कृत्य का भव्य रूप
धन उदित हुआ विक्रम महान ।

विजय महान है एक भाग
 प्रेरणा, एक विजय महान ।
 विजय महान जय का गतीव
 करने वाला हुए शायं ध्यान ।
 है एक महान कल्पना शीर्ष
 जिगजा हुआ है नीचे स्थान ।
 विजय महान व जयय रूप
 है प्रकृति विरस व अर्थ-भाग ।
 विजय महान शयसुच विरस
 गुण राष्ट्र-वपता व प्रतीक ।
 तुमको पाकर है एक पश्य
 गच्छति-वर्तिता वी पुण्य-वीक ।

है धीत रूप वा साहस्यर
 पर शयु-दीन जीवन-गिलास ।
 धिर-नन वरस व साथ साथ
 लेकर आता है नगो-रूपास ।
 प्रतीकं पुरातन माचिप्र
 तन शरण से आसिधु, धीर ।
 जिनकी आहट पा गनु-सैन्य
 विचलित हो भद्राती अर्धार ।
 धोड़ों की टापों के निशान
 लेकर विभोर हैं शिलाखंड ,
 पग-पग मग-भग सर्वत्र गूँज
 दिग्विजय-गीत उठने प्रचंड ।

विक्रम महान

विक्रम, तुम थे सम्राट्—राष्ट्र
की आत्मा के सम्राट्, सत्य ।
कहता है सन्तियो का प्रवाह
कहते हैं विग्रहे हुए कृत्य ।
हो जायें यदि इतिहास मौन
मिट जायें यदि सब शिलालेख,
तो भी क्या धूमिल रक्तवर्ण
हो सन्ती है वह वग्ररेख ?
साता है साये कालदर्श
है अमर राष्ट्र का यश स्तम्भ
उसके चरणों में लोट लोट
मिल गय धूलि में दस्यु-दम्भ ।
डोली धरणी, डोले पहाड़,
उन्मथित सिंधु, का अन्तराल,
तो भी तुम अधिचल रहे किन्तु
साक्षी है विस्तृत पुराकाल ।

साक्षी है जन, जनपद, ज्ञान,
साक्षी युगयुग का कीर्तिगान ।
किस पुण्य कृत्य का भव्य रूप
बन उदित हुआ विक्रम महान ।

विष्याचल, हिन्दुकुशा, हिमाद्रि
विक्रम गाथा के सुकवि मूफ ।
मरु, गुर्जर, मालव, महाराष्ट्र
सब उसी काव्य से रहे वृष ।

विध्याचल, हिन्दुकुशा, हिमाद्रि
विक्रम गाथा के सुकवि मृगु ।
मरु, गुर्जर, मालव, महाराष्ट्र
सब उर्सा काव्य मे रहे कृष ।

नान्ददा

का गान्धरा मून उबलत
रबला भाग का गान्धीप ।
तीक्ष्ण-दर्शन की इंस शीघ्र
नेर ही धारों से गमीप ।
नी गिही का एक एक
क्षण क्षीर दृष्टि से व्याप्त-शोप ।
नेर भाग से पहा पृष्ठ
विद्या का पावन पुण्य श्रोत ।
तू प्रकल्पित घर लच्छ-भाग
दोगया तीक्ष्ण-महाभाग ।
हो गये कमर कितना प्रवाद
पा तेरी बानी का पराग ।
तू पश्य, दिग्गज शृंगला जाल
का एक बार फिर से सदेज ।
भारत के भेष का अपूर्व
तू सका विरय का अतुल तेज ।

विद्या का पावन पुण्य पीठ
रह गया : एक ध्वंसावशेष ।
स्मृति में तेरा पैभव अपार
विस्तरा है लेकर स्वप्न शेष ।

ताजमहल

लिख गया प्रेम का अमर काव्य
 यह शाहजहाँ था कवि महा ।
 यमुना की लहरों के समीप
 है उससे मृदु सर का प्रमाण ।
 मर्मर निमित्त है ताज—आह !
 यह सत्यज्ञान कितना फटोर ।
 तुम नहीं देख पाने प्रवाह
 लेकर बहती सर की हिलोर !
 प्रेमी-नयना की अक्षुरारि
 जम गई श्वेत हिम के समान ।
 ये गुम्बज, ये भीमार भव्य
 हैं उस उभार के उर्मि-गान ।
 'मानव जीवन है एक आह'—
 कह रो उठते पत्थर उदास ।
 'है किन्तु प्रेम ता अमर सत्य'
 इगित कर गाता चन्द्रहास ।
 यह ताज बही चिर काल सत्य
 शाश्वतता का निश्चिन प्रमाण ।
 कवि शाहजहाँ के इत्य-बीच
 पाये इसने चिर रूप प्राण ।
 यह ताज सेतु है जहाँ मौन
 हा मिले मृत्यु-जीवन सहास ।

कण कण इसका है अश्रुसिक्त
 औ' रोम-रोम पावन प्रकाश ।
 वह शिल्पी से-भी था महान-
 जिसके स्वप्नो का यह शरीर ।
 वह कहीं प्रिया मुमताज आज
 रोता प्रेमी का उर, अधीर ।

' ❀ ; ❀ - ' ❀ '

सम्राट् नहीं सम्राट्, दीन
 है वह दुर्भाग्य-समीप हाय !
 कहने को जहाँपनाह किन्तु
 वह बच्चो सा ही मृत उपाय ।
 वह प्राणप्रिया, ले गया छीन
 है मूर 'काल दुर्जय' महान',
 पीपल सा उठता हृदय काँप
 उसके विलोक दृग 'वह्निमान ।
 आहत प्राणों से एक चीख
 आँसु से कढती अश्रुधार ।
 लेगया कहीं तूफान हाय !
 स्वप्नों का वह स्वेप्निम प्रसार ?
 मादक यौवन की एक रात
 भी कहीं बीत पाइ, 'परन्तु
 निष्ठुर अदृष्ट के मूर हाथ
 आ तोड़ गये वह स्नेह-तन्तु ?
 बुद्बुद्-सा जीवन का उफान
 आते आते हो गया लीन ।

माघ्राट शून्य में रक्षा स्नान
 यह बर्त प्रिया की कंठ-धौन ?
 अपने हाथ से उसे धाज
 कर दिया धरा की भेंट हाथ !
 जो रहनी थी सर पे समीप
 उमके पाते का क्या उपाय ?
 फिमसे गुदें चमक पता थाह !
 जीवन का किमा है रहस्य ?
 यह दुलना गरिरा पे ममान,
 यह उड़जा टाकर शुभक रास्य !

ॐ ॐ ॐ

“क्या शाहजहाँ पे साय माघ
 ओ प्रिया ! तुम्हारी मगुर याद
 इस धरा धाम से हो विलीन
 पा जायेगी मन की गुराह ?
 यह जैसे सोचेगा दिमाग,
 जैसे मानेगा सद्विचार ?
 हो सदा भाग्य की सहन जीत
 औ’ शाहजहाँ की टार—हार !
 क्या इतना अस्थिर प्रेम-सन्ध,
 क्या यही प्रणय का सुपरिणाम ?
 आसिगन से मुमताम छीन
 ले जाय प्रिया का छीन नाम !
 सोओ प्रेयसि ! तुम यहाँ मौन
 यह मर्मर की रचकर समाधि ।

क्या कभी पा सकेंगी प्रवेश
 इस प्रेम-कुञ्ज में आधि व्याधि ?
 इसकी छाया में - सौम्य शांति
 का चिर विलास ही सहज सत्य ।
 लो प्रणय मुधा पी चार घूँट
 लेटो, ओ जीवन की सुकृत्य ।
 पहरा + देता है - यहाँ प्रेम
 है भाव-सिधु (परिजा) विशाल ।
 इस शुभ्रशिल्प के आसपास
 आते डरता है महाकाल ।
 जीवन प्रवाह हो जाय + क्षीण
 धूमिल हो खूबे सृष्टि-साज ।
 चिर नव वसतश्री से सदैव
 यह पूर्ण रहेगा प्रथित ताज ।
 ❀ १) १ ❀ १ ❀
 कर प्रेमलोक की नई सृष्टि
 दे गया विश्व को शुभ्र ताज ।
 था शाहजहाँ प्रेमी अनन्य
 कर याद दग्ध मानव-समाज ।
 उर में उठती है एक हृक
 है रोम-रोम में तीव्र गह ।
 सोकर भी दोनों पास-पास
 हैं कभी कभी उठने पराह ।
 कत्रों के भीतर मधुर टीस
 था कभी कभी आता उफान

भावी वियोग से व्यधित प्राण
 लहराने चपना के समान ।
 मर्मर से ॥ भक्तते अश्रु चार
 जिनसे घुलता रहता विपाद ।
 जीवन के क्षण क्षण का हिसार
 लेकर आती मधु मंदिर याद ।
 है नहीं आज तन की सम्भाल
 मन का अनुशामन हुआ दूर ।
 मिट्टी में करके उगहें राक
 क्या जड कर पाई कन्न क्रूर ?
 आलिंगन को बेसम्र प्राण
 हैं बार बार उठते मसोस ।
 चू पडती है दोन्चार बूँद
 शशि की किरणों से स्निग्ध श्रोस ।
 यह ताज एक मंदिर पवित्र
 है प्रणय-श्रेयता का प्रशान्त ।
 उर की श्रद्धा ले यहाँ नित्य
 पूजा करते प्रेमी अशात ।

विश्वभारती

विश्वभारती, दू कवीन्द्र का
एक स्वप्न अभिराम—
भूत स्वप्न, पारचात्य प्राच्य के
मधुर मिलन का धाम ।

पुजीभूत धूम्र, ज्वाला से
ज्वलित विश्व के प्राण,
विश्वभारती, आज तुही
आहत आत्मा का प्राण ।
तेरे शातिनिकेतन में फिर
उठा पुरातन जाग ।

ऋषियों के आश्रम का पंग पंग
कैला पुण्य पराग ।

क्षितिज-मूल विश्राति-कुज में
पूर्व उपा का राग

शिलीभूत होगया, तपस्वी का
तप तेज विराग ।

ज्ञान-दान की परंपरा का
सज्ज्वलतम इतिहास,

फिर से लिखने चला काल भर
प्राणो का उल्लास ।

विश्वभारती के मंदिर में,
कला, ज्ञान, विज्ञान,

एक साथ फूटो भारत के
 घर का पा रस-गान ।

देश देश के ज्ञान-कुमुम की
 छाड़ मद सुवास ।

शुष्क बल्लरी में जीवन का
 आया फिर मधुमास ।

संस्कृतियों के इस प्रयाग में
 मितो अस्मत्प्रवाह,
 व्यस्त विश्व-मानव कृतार्थ पा
 दिव्य ज्यानि-तेरु छाँद ।

धर्म, जाति, कुल, वर्ण, राष्ट्र का
 यहाँ पूर्ण अविचार ।

मानवता का पूजन होता
 सतत मुक्त ङ्ग द्वार ।

निरिन्, कला, साहित्य, शिल्प, बहु
 दर्शन, ज्ञान, विचार
 महिमान्वित हो उठे तोड़ कर
 रुदि पारों दुर्घोर ।

ओ कवीन्द्र की दिव्य साधना
 विश्वभारती ! धन्य ।

इस वसुधा में कहीं अनुपमे !
 तेरी समता अन्य ?

